सा विद्या या विमुक्तये

युवाचार्य महाप्रज्ञ

शिक्षा जगत का प्रसिद्ध सूत्र है—"सा विद्या या विमुक्तये"—विद्या वही है जिससे मुक्ति सधे। मुक्ति के अर्थ को हमने एक सीमा में बाँध दिया। हमने उसे मोक्ष के अर्थ में देखा। मोक्ष की बात बहुत आगे की है, मरने के बाद की है। जिसको जीते जी मुक्ति नहीं मिलती, उसको मरने के बाद भी मुक्ति नहीं मिल सकती। जब वर्तमान क्षण में मुक्ति मिलती है तो वह आगे भी मिल सकती है। जो वर्तमान क्षण में बँधा रहता है, उसे आगे मुक्ति मिलेगी, ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती। मुक्ति का एक व्यापक सन्दर्भ है। उसे हमें समझना है। उसे समझ लेने पर हमारा दृष्टिकोण बहुत कार्यकर होगा।

शिक्षा के क्षेत्र में मुक्ति का पहला अर्थ है—अज्ञान से मुक्त होना। अज्ञान बहुत बड़ा बन्धन है। अज्ञान के कारण ही व्यक्ति अनेक अनर्थ करता है। इसे आवरण माना गया है। आवरण बन्धन है। शिक्षा का पहला काम है—इस बन्धन से मुक्ति दिलाना, अज्ञान से मुक्त करना। इस परिप्रेक्ष्य में हम कहेंगे—"सा विद्या या विमुक्तये"—शिक्षा वह है जो अज्ञान से मुक्त करती है।

मुक्ति का दूसरा सन्दर्भ होगा—संवेगों के अतिरेक से मुक्ति। आदमी में संवेग का अतिरेक होता है और वह आदमी को पकड़ लेता है, आसानी से नहीं छूटता। जब तक व्यक्ति वीतराग अवस्था को प्राप्त नहीं हो जाता तब तक वह संवेगों से पूर्णरूपेण छुटकारा नहीं पा सकता। संवेगों के अतिरेक के कारण आदमी न परिवार में, न समाज में और न गाँव में फिट हो सकता है। वह दूसरों के लिये सिरदर्द बन जाता है। ऐसी स्थिति में यह स्वयं प्राप्त होता है कि शिक्षा उसे संवेगों के अतिरेक से मुक्ति दिलाये। इसका अर्थ है कि मनुष्य में संवेगों पर नियन्त्रण करने की क्षमता बढ़े जिससे कि संवेगों की प्रचुरता न रहे। वे एक सीमा में आ जायें।

मुक्ति का तीसरा सन्दर्भ होगा—संवेदों के अतिरेक से मुक्ति। इन्द्रियों की जो संवेदनाएं हैं, उनका अतिरेक भी समस्याएं पैदा करता है और समाज में अनेक उलझनें उत्पन्न करता है। शिक्षा का यह महत्वपूर्ण कार्य है कि वह संवेदनाओं के अतिरेक से व्यक्ति को मुक्ति दिलाये।

मुक्ति का चौथा संदर्भ होगा—धारणा और संस्कार से मुक्ति। व्यक्ति धारणाओं और अर्जित संस्कारों के कारण दुःख पाता है। शिक्षा का कार्य है कि वह इनसे मुक्ति दिलाए।

मुक्ति का पाँचवा संदर्भ होगा—निषेधात्मक भावों से मुक्ति। व्यक्ति का नेगेटिव एटिट्यूड समस्या पैदा करता है। इससे मुक्त होना भी बहुत आवश्यक है।

इन पाँच संदर्भों में मुक्ति को देखने पर "सा विद्या या विमुक्तये" का सूत्र बहुत स्पष्ट हो जाता है। वास्तव में विद्या वही होती है जो मुक्ति के लिए होती है, जिससे मुक्ति सधती है। हम कसौटी करें और देखें कि क्या आज की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिक्षा से ये पाँचों संदर्भ सधते हैं ? क्या वास्तव में अज्ञान आदि से मुक्ति मिलती है ? यदि अज्ञान आदि से मुक्ति मिलती है, तो वह शिक्षा परिपूर्ण है और यदि नहीं मिलती है, तो उसमें कुछ जोड़ना शेष रह जाता है। जीवन-विज्ञान की पूरी कल्पना इन सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में की गई है। जिन-जिन संदर्भों में मुक्ति की बात सोच सकते हैं, वे बातें शिक्षा के द्वारा फलित होनी चाहिये।

आज शिक्षा के द्वारा अज्ञान की मुक्ति अवश्य ही हो रही है। आज ज्ञान बढ़ रहा है, बौद्धिक विकास हो रहा है। किन्तु संवेग के अतिरेक से मुक्ति आदि की बातें शिक्षा से जुड़ी हुई न हों, ऐसा प्रतीत होता है। लोगों की धारणा यही है कि यह बात धर्म के क्षेत्र की है, शिक्षा के क्षेत्र की नहीं है। यह धारणा अस्वाभाविक भी नहीं है, क्योंकि धर्म का मूल अर्थ ही है संवेगों पर नियन्त्रण पाना। यह धर्म के मंच का काम होना चाहिये। शिक्षा क्षेत्र का यह कार्य क्यों होना चाहिये ? ऐसा सोचा जा सकता है। पर वर्तमान परिस्थिति में धर्म की भी समस्या है और वह यह है कि धर्म का स्थान मुख्यतः सम्प्रदाय ने ले लिया है। इसलिए साम्प्रदायिक वातावरण में धर्म के द्वारा संवेग-नियन्त्रण की अपेक्षा रखना निराशा की बात है।

एक स्थिति यह है कि आज का विद्यार्थी जिस परिवार में जन्म लेता है, जहाँ पलता है, उस परिवार में जो धार्मिक संस्कार है, जिस सम्प्रदाय की मान्यता है, उसके सम्पर्क में भी वह बहुत कम रह पाता है। दिन में वह इतना व्यस्त रहता है कि उठते-उठते ही वह विद्यालय जाने की बात सोचता है और वहाँ से लौटने पर गृहकार्य (होम वर्क) में निमग्न हो जाता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक घर में रहते हुए भी पिता-पुत्र मिल नहीं पाते। आज सामाजिक वातावरण और स्थितियाँ ही ऐसी बन गई हैं। एक व्यक्ति से मैंने पूछा—क्या तुम कभी अपनी सन्तान को शिक्षा देते हो ? वह बोला—'महाराज जी ! मैं सुबह देरी से उठता हूँ, तब तक लड़का स्कूल चला जाता है। जब वह स्कूल से लौट कर आता है, तब तक मैं आफिस में रहता हूँ। जब मैं देरी से घर लौटता हूँ, तब तक वह सो जाता है और सुबह जल्दी उठकर चला जाता है। आमने-सामने होने का कभी अवसर ही नहीं आता। केवल रविवार को मिलते हैं, कुछ बात कर लेते हैं, और समाप्त'।

ऐसे वातावरण में धर्म के द्वारा बच्चे को कुछ मिल सकेगा, ऐसी सम्भावना नहीं की जा सकती। इस स्थिति में बालक का निर्माण शिक्षा से जुड़ जाता है। अतः हमें सोचना होगा कि शिक्षा के साथ कुछ ऐसे तत्त्व और जुड़ने चाहिए, जिनसे बच्चों के संस्कारों का निर्माण हो और उसे वह मौका भी मिले कि वह अपने संवेगों और संवेदनाओं का परिष्कार भी कर सके। आज दोनों कामों को एक ही मंच से करना होगा। बच्चों का निर्माण भी हो और संस्कार-परिष्कार भी हो। शिक्षा के क्षेत्र से ये दोनों काम हो सकते हैं। इस दृष्टि से शिक्षा जगत् का दायित्व दोहरा हो जाता है। यह बहुत बड़ा दायित्व है। 'फेरो' ने बहुत बड़ी बात कही है—'वर्तमान विद्यालय व्यक्ति को साक्षर बनाते हैं, शिक्षित नहीं बनाते।' साक्षर बनाना एक बात है और शिक्षित करना दूसरी बात है। आज की साक्षरता भी कुछ ऐसी हो गई है कि उसकी तुलना कम्प्यूटर या टेपरिकार्डर से की जा सकती है। हमने भ्रमवश स्मृति और बुद्धि को एक मान लिया है। स्मृति और बुद्धि एक नहीं है। कम्प्यूटर में इतनी तीव्र स्मृतियाँ नियोजित हैं कि आदमी उसके सामने कुछ भी नहीं है, बहुत छोटा है। आज का युग कम्प्यूटर का होता जा रहा है। सूचनाओं, ज्ञान और आंकड़ों का सम्बन्ध स्मृति से है। टेपरिकार्डर सारी बात दुहरा देता है।

शिक्षा का काम केवल स्मृति को बढ़ाना ही नहीं; केवल आंकड़ों से मस्तिष्क को भरना ही नहीं है, साक्षरता ला देना ही उसका काम नहीं है, उसका काम भावों का परिष्कार भी है। इसी से व्यक्ति में स्वतन्त्र-निर्णय, स्वतन्त्र-चिन्तन और दायित्व बोध की क्षमता विकसित होती है। यह तभी सम्भव है कि शिक्षा केवल साक्षरताभिमुख न रहे। उसमें कुछ और भी जुड़े।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवेग और संवेद —ये दो महत्वपूर्ण तत्त्व हैं, क्योंकि वर्तमान में जो सामयिक समस्याएं हैं, वे सारी इन दो तत्त्वों के साथ जुड़ी हुई है। जो शिक्षा प्रणाली विद्यार्थी को समाज की वर्तमान समस्याओं के सन्दर्भ में कुछ कार्य करने की प्रेरणा नहीं देती, वह शिक्षा प्रणाली बहुत काम की नहीं होती। "फेरो" ने ठीक ही लिखा—"साक्षर व्यक्ति केवल सरकार का ईंधन बनता है।" आज की शिक्षा ईंधन मात्र तैयार कर रही है, ज्योति तैयार नहीं करती। ज्योति और ईंधन एक बात नहीं है। ईंधन तैयार करना बहुत बड़ी बात नहीं है। बड़ी बात है–ज्योति प्रज्वलित करना।

आज समूचे विश्व में बहुत क्रांतदृष्टि से सोचा जा रहा है कि शिक्षा में क्या परिवर्तन होना चाहिए। जिस शिक्षा से समाज में, व्यवस्थाओं में परिवर्तन नहीं आता, संकट कम नहीं होता, उस शिक्षा को भारतीय दर्शन में अशिक्षा और ज्ञान को अज्ञान माना है। भारत की प्रत्येक धर्म-परम्परा का यह स्वर समानरूप से मिलेगा कि जिससे संयम की शक्ति और त्याग की शक्ति नहीं बढ़ती, वह ज्ञान अज्ञान है। जिसमें त्याग और संयम नहीं है, वह पंडित नहीं, अपंडित है।

जैन ग्रन्थों में 'बाल' और 'पंडित'—ये दो शब्द प्रचलित हैं। बाल तीन प्रकार के होते हैं। एक बाल होता है अवस्था से, दूसरा बाल होता है अज्ञान से और तीसरा बाल होता है असंयम से। जिसमें त्याग की क्षमता नहीं है, वह सत्तर वर्ष का हो जाने पर भी 'बाल' कहा जायेगा। जिसमें त्याग की क्षमता है, अस्वीकार की क्षमता है, बलिदान की क्षमता है, वह चाहे बीस वर्ष का ही हो, फिर भी पंडित कहा जाएगा, बाल नहीं कहा जाएगा। गीता में पंडित उसे कहा है जिसके सारे समारम्भ वर्जित हो गए है। जैन आगम सूत्रकृतांग में एक चर्चा के प्रसंग में प्रश्न रखा गया है कि 'बाल' और 'पंडित' किसे कहा जाए? सूत्रकार ने उत्तर दिया —'अविरइं पडुच्च बालोत्ति आह, विरइं पडुच्च पंडिएति आह'—जिसमें अविरति है, अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण करने की क्षमता है, वह पंडित है।

इच्छा प्राणीमात्र का असाधारण गुण है, विशिष्ट गुण है। जिसमें इच्छा नहीं होती, वह प्राणी नहीं होता। यह प्राणी और अप्राणी की भेद-रेखा है। मनुष्य में इच्छा पैदा होती है। इच्छा पैदा होना एक बात है और किस इच्छा को स्वीकार करना, किस इच्छा को अस्वीकार करना, यह काँट-छाँट मनुष्य ही कर सकता है। अन्य प्राणी ऐसा नहीं कर सकते। मनुष्य की विवेक चेतना जागृत होती है, इसलिए वह इच्छा की कांट-छांट कर सकता है। वह हर इच्छा को स्वीकार नहीं करता। यदि वह प्रत्येक इच्छा को स्वीकार करता चले, तो सारी व्यवस्था गड़बड़ा जाती है। एक सुन्दर मकान देखा, किसकी इच्छा नहीं होगी कि मैं इस मकान में रहूं? इच्छा हो सकती है। रास्ते में खड़ी सुन्दर कार को देखा, कौन नहीं चाहेगा कि मैं इसमें सवारी करूं। इच्छा हो सकती है। प्रत्येक रमणीय सुन्दर और मनोरम वस्तु के लिए व्यक्ति की इच्छा हो सकती है। पर वह यह सोचकर इच्छा को अमान्य कर देता है कि यह मेरी सीमा की बात नहीं। यह है विवेक-चेतना का काम।

शिक्षा का काम है कि वह मनुष्य मनुष्य में विवेक चेतना को जगाए। इससे संवेग-नियन्त्रण और संवेदनाओं तथा आवेगों पर नियन्त्रण करने की क्षमता पैदा होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org